शब्द:—ईशानी प्रवंचना नहीं करती। मनुष्य में यदि अध्यवसाय और वीरत्व है तो ईशानी सहायता करने को तैयार है।

[सबका चकित हो उस ओर देखना। रघुनाथ का संन्यासी के भेष में आना]

शिवा०:—गोस्वामी जी! आपने हमारे हृदय को फिर से उत्साहित कर दिया। इसी प्रकार मरते समय दादा कनाई देव ने भी उपदेश किया था। इससे बढ़कर मनुष्य के निकट और कोई महत्त्व की चेष्टा नहीं हो सकती। भगवती ने भी देश की स्वाधीनता के लिये इसी प्रकार स्वप्न में आज्ञा दी थी। आज तक हमारे कान में वही शब्द गूंज रहे हैं।

संन्या०:—कनाई देव ने ठीक ही कहा था, उन्नत पथ पर चलने से अवश्य ही उन्नति का लाभ होता है। निरुत्साहित होकर रास्ते में बैठ जाना कायरता है। राजन्! यदि कोई अनुचित शब्द निकल जाय तो बुरा न मानना। मेरा उपदेश सत्य है अथवा झूठ, अपने वीर हृदय से पूछ लेना। आपने राजपदवी ग्रहणकर खड्ग द्वारा स्वतन्त्रता का पथ अकंटक किया है। आपने देश देशान्तर में अपने वीरत्व के चिह्न अंकित किये हैं। क्या वह वीरभाव भूल गया है? बालसूर्य की भांति जो हिन्दू राजा अपनी ज्योति द्वारा चारों दिशाओं में यवन-अंधकार दूर कर रहा था, क्या वह सूर्य अकाल ही में अस्त हो जायगा? राजन्! हिन्दू-गौरव-लक्ष्मी ने आपको वरा है, क्या आप अपनी इच्छा से उसे

त्यागना चाहते हैं? मैं केवल धर्म-उपदेशक हूं। मुझे राज-काज में परामर्श देने की योग्यता नहीं। आप स्वयं विवेचना कर लें।

शिवा०:-आपके साथ परिचयहुए अभी थोड़ाही समय हुआ है। आप अपनी योग्यता से मनुष्य नहीं देवता जान पड़ते हैं। मैं एक बात आपसे पूछता हूं। हिन्दू सेनापति बड़ा प्रतापी और रण-कुशल है, साथ में राजपूत सेना भी अधिक है। क्या उनसे युद्ध करने योग्य हमारे पास भी सेना है?

संन्या०:-राजपूतगण अवश्य वीर हैं। परन्तु महाराष्ट्रगण भी खड्ग चलाने में दुर्बल नहीं हैं। जयसिंह रण-पंडित हैं तो शिवाजी ने भी क्षत्रिय-कुल में जन्म लिया है। पराजय का विचार करना ही पराजित होना है। ईश्वर की कृपा पर भरोसा करके कार्य साधिये। भारतवर्ष में ऐसा कोई हिन्दू नहीं है जो आपका साथ न दे।

शिवा०:-ठीक है, परन्तु हिंदुओं का आपुस में लड़कर पृथ्वी को हिन्दुओं के रुधिर से रँगना क्या मंगल-कार्य है?

संन्या०:-इस पाप का भागी कौन है? जो स्वजातियों या स्वधर्मियों से युद्ध करे, जो विजातियों के लिये स्वजातियों से वैरभाव रक्खे।

शिवा०:-गोस्वामीजी! आज मुझे निश्चय हो गया कि अभी तक महाराष्ट्र देश वीर-शून्य नहीं है। अब भी वह पराधीन नहीं है। परन्तु क्या कभी वह दिन भी आवेगा जब हम भारतवर्ष को स्वतन्त्र

देख सकेंगे ? हम पराजय की आशंका नहीं करते और न स्वधर्मियों के नाश से डरते हैं। किन्तु एक दूसरा ही कारण है। हिन्दू-धर्म के अवलम्बस्वरूप, सत्यनिष्ठ, प्रतापी महाराज जयसिंह से जो संधि की है उसे नहीं तोड़ सकते। उस धर्मात्मा ने एक दिन कहा था—"सत्य का पालन यदि सनातन हिन्दू-धर्म नहीं है तो क्या सत्योल्लंघन है ?" ये शब्द आज तक हमारे कान में गूंज रहे हैं।

अन्नजी०:-महाराज ! आप औरंगज़ेब की चालाकी को नहीं जानते। उसकी बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिये। उसने अपने किस कार्य का साधन इसमें रक्खा है, क्या आपने अनुभव किया है ?

शिवा०:-अन्नजी ! जयसिंह ने स्वयं वचन दिया है कि "तुम्हें दिल्ली जाने में कोई अनिष्ट नहीं सहन करना पड़ेगा।"

अन्नजी०:-कपटाचारी औरंगज़ेब यदि आपको क़ैद करले या आपकी हत्या कर डाले तब जयसिंह किस प्रकार आपकी रक्षा करेंगे ?

शिवा०:-तब तो संधि-उल्लंघन का फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

दत्तजी०:-महाराष्ट्र-भूमि वीरप्रसविनी है। औरंगज़ेब के ऐसे आचरण से इस देश में युद्धानल प्रज्वलित होगी। फिर सारे समुद्र का जल भी उसे बुझा न सकेगा।

शिवा०:-अब आप लोग मुझे आज्ञा दें। पेशवाजी मूरेश्वर, आबाजी स्वर्णदेव, अन्नजीदत्त, आप तीनों

के समान कार्यदक्ष, विचक्षण, शक्तिशाली महाराष्ट्र देश में कोई नहीं है। आप तीनों मेरी अनुपस्थिति में महाराष्ट्र देश का कार्य करें। आपके आदेश को लोग हमारा आदेश समझेंगे।

मालश्री०ः–महाराज! बाल्यकाल से मैंने आपका साथ नहीं छोड़ा। आज्ञा हो तो मैं भी आपके साथ चलूं?

शिवा०ः–मालश्री! आप अधीर न हों। आपकी इच्छा पूर्ण हुई।

संन्या०ः–राजन्! फिर अब मुझे भी बिदा कीजिये। मुझे भी अपने व्रतसाधन के लिये बहुत से तीर्थों का भ्रमण करना है। जगदीश्वर आपको सकुशल रक्खें।

शिवा०ः–नवीन गोस्वामी! सकुशल यात्रा कीजिये। ऐसी थोड़ी अवस्था के किसी दूसरे व्यक्ति में हमने ऐसा तेज और साहस नहीं देखा। मैं भी अब दिल्ली जाने की तैयारी करता हूं।

[परदे का गिरना]

पांचवां दृश्य

सरोवर

[आगे २ रघुनाथ का संन्यासी के भेष में और उनके पीछे सरयूबाला का आना]

संन्या०:-भद्रे ! तुम्हारी बातों पर कैसे विश्वास करूं। तुम्हारे ललाट की रेखायें तुम्हारे अन्तर्दाह की लपटों का काम दे रही हैं।

सरयू०:-क्षमा कीजियेगा। अभी तक लज्जावश हृदय के भाव को छिपाने की जो चेष्टा की थी वह विफल हुई। निस्संदेह प्रियतम का कुसंवाद मेरे मन को व्याकुल कर रहा है। ईश्वर करे वे कुशल से हों?

संन्या०:-कौन, रघुनाथ ! उसे तो महाराज ने विद्रोही और विश्वासघाती समझकर देशनिकाले का दंड दिया है।

सरयू०:-संसार उन्हें चाहे जो समझे परन्तु मैं विद्रोही मानने में असमर्थ हूं। इसी असमंजस की प्रबल धार मुझे डुबा रही है।

संन्या०:-इसकी तो मेरे पास एक सहज सी दवा है।

सरयू०:-[हाथ जोड़कर] कृपा कर शीघ्र बताइये, मेरे दुख को मिटाइये।

संन्या०:-सुनो। किसी प्रणयिनी को अपने पीतम के मन का भाव जानने के लिये अपने मन की थाह लेना चाहिये। रघुनाथ दोषी है अथवा निर्दोषी, यह तुम अपने मन से जान सकती हो।

सरयू०:—आप धन्य हैं। आज एक बड़ा भारी बोझ आप ने मेरे हृदय से उतार लिया। आज मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि रघुनाथ निर्दोषी हैं।

संन्या०:—भद्रे! भ्रमण करना हम लोगों का स्वाभाविक नित्य कर्म है। सम्भव है रघुनाथ से फिर कभी भेंट हो जाय। यदि कोई संदेश हो तो कह दो, भेंट होने पर उन्हें सुना दूंगा।

सरयू०:—क्या आपकी उनसे भेंट हुई थी?

संन्या०:—हां। कल ईशानी देवी के मन्दिर में।

सरयू०:—क्या आप जानते हैं अब उनका क्या करने का विचार है?

संन्या०:—वे या तो बाहुबल से अपयश को दूर करेंगे या प्राण देंगे।

सरयू०:—मेरी भी इससे विपरीत कोई इच्छा नहीं है। मैं अपने को धन्य समझूंगी जिस दिन रघुनाथ कलंक-शून्य हो वीरभाव से दर्शन देंगे।

संन्या०:—भगवान् यही करें। परन्तु भद्रे! सत्य की कभी२ शीघ्र ही जय नहीं हुआ करती। रघुनाथ जिस कार्य को कर रहे हैं उसके साधन में प्राण जाने का संदेह है।

सरयू०:—वीरों का यही धर्म है। आप उनसे कहदीजियेगा कि, व्रत-साधन में यदि वे स्वर्गलोक की यात्रा करेंगे तो सरयू भी उनके यशोगीत को गाते २ सहर्ष अपने प्राण त्यागेगी।

संन्या०:—अवश्य भेंट होने पर तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से रघुनाथ के जलते हुए हृदय को शीतल करूंगा।

सरयू०:-प्रभू ! आपने मेरे मन को शान्ति दी है। क्या मैं आपका नाम पूछ सकती हूं।

संन्या०:-मेरा नाम "सीतापति गोस्वामी" है।

सरयू०:-अब आज्ञा दीजिये, पिता जी राह देख रहे होंगे।

[सरयूबाला का प्रणाम करके जाना]

संन्या०:-[स्वय] सरयू ! सरलहृदया सरयू !! आज मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। धन्य है वह मनुष्य जिसे तुझ समान नारी को अर्धाङ्गिनी बनाने का सौभाग्य प्राप्त हो। खैर, कुछ दिन और इसी प्रकार जीवन व्यतीत कर। तब तक रघुनाथ भी अपने कलंक को दूर कर ले। फिर रघुनाथ तेरा है और तू रघुनाथ की है।

[जाना]

[परदे का उठना]



छठा दृश्य

शिवाजी का शिविर

[शिवाजी और शम्भुजी बैठे हैं। एक पहरेदार का आना]

सिपाही०:-महाराज जयसिंह के पुत्र रामसिंह एक सैनिक के साथ बाहर खड़े हैं। उन्हें सम्राट ने आप के स्वागत के लिये भेजा है।

शिवा०:-सादर ले आओ।

[पहरेदार का जाना]

शम्भु०:-पिताजी! आपके बुलाने के लिये औरंगज़ेब ने दोही दूत भेजे हैं?

[रामसिंह का आना]

राम०:-इससे पहले महाराज के दर्शन करने का कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। पिताजी से आपके उच्च उद्देश्यों की कथा सुना करता था। आज आपके दर्शन पाकर मेरे नयन सार्थक हुए।

शिवा०:-आपके पिता के समान विचक्षण, धर्मपरायण, सत्यप्रिय, वीर पुरुष राजस्थान में विरला ही होगा। दिल्ली में आते ही उनके पुत्र का साक्षात् होवे से मुझे भी बड़ा आनन्द हुआ। यह मेरे लिये उत्तम शकुन है।

राम०:-राजन्! आपके दिल्ली पहुँचने का समाचार सुनते ही सम्राट ने आपके स्वागत के लिये मुझे भेजा है। क्या इसी समय आपकी इच्छा नगर-प्रवेश की है?

शिवा०:-इस संबंध में आपकी क्या सम्मति है?

राम०:-हमारे निकट तो आप अभी चले चलें। देर होनेसे

लू चलने लगेगी और गर्मी भी अधिक सतावेगी।

शिवा०:–[मुस्कुराकर] मैं यह नहीं पूछता। आप तो दिल्ली में बहुत दिन से रहते हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं है। हम दिल्ली में क्यों बुलाये गये हैं—इसे आप अवश्य जानते होंगे।

राम०:–महाराज! क्षमा कीजियेगा। मैं आपका मतलब नहीं समझा था। यदि मैं आपके स्थान पर होता तो सदैव पर्वतों में वास करता और अपने खड्ग पर भरोसा करता। खड्ग से बढ़कर और कोई प्रकृत बन्धु नहीं है। किन्तु जब पिताजी ने ही आपको दिल्ली बुलाया है तो आपका आना अच्छा ही है। वह अद्वितीय पंडित हैं। उनका परामर्श कभी व्यर्थ नहीं होता।

शिवा०:–हां! आपके पिताही ने मुझे यहां आने का परामर्श दिया था, साथही यह भी कहा था कि दिल्ली में तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने पावेगा। इसमें आपकी क्या सम्मति है?

राम०:–पिता का आदेश मानना आवश्यक है। राजपूतों की कही हुई बात कभी झूठी नहीं होती। आपके निरापद स्वदेश लौट जाने में यह दास भी कोई बात उठा न रक्खेगा।

शिवा०:–तो आपका परामर्श ग्रहण करता हूं। इसी समय दिल्ली चलना चाहिये। देर होने से पवन प्रचंड हो जायगी। [सब का जाना]

[परदे का उठना]

सातवां दृश्य

दर्बार

[औरंगज़ेब सिंहासन पर और अन्य दर्बारी अपने २ स्थान पर बैठे हैं]

[चोबदार का आना]

चोब०:–जहांपनाह का मरतबा आली। कुँअर रामसिंह और महाराज शिवाजी बाहर खड़े हैं और हुज़ूर की इजाज़त के मुन्तज़िर हैं।

औरंग०:–आने दो।

[चोबदार का जाना]

[रामसिंह और महाराज शिवाजी का आकर औरगज़ेब को सलाम करना और नज़र दिखाना। औरगज़ेब का इशारा पाकर रामसिंह का शिवाजी को साथ ले जाकर पचहजारियो के पीछे बैठने का इशारा करना]

शिवा०:–[क्रोधित होकर] क्या यही स्थान मेरे लिये नियत किया गया है।

राम०:–हाँ।

शिवा०:–परन्तु महाराज जयसिंह ने तो मुझे इसके विपरीत आशा दिलाई थी। [सम्राट से] क्या सम्राट ने इसी स्थान की आज्ञा दी है।

औरंग०:–हाँ। आपके लिये जो मुनासिब जगह थी वही मुकर्रर की गई है।

शिवा०:-क्या शाइस्ताखाँ और अफज़लखाँ इत्यादि से भी मैं नीचे बैठने योग्य हूँ ?

औरंग०:-हर शख़्स को रुतबे के माफिक दर्बार में जगह मिलती है।

शिवा०:-तो क्या यह लोग मुझ से उच्चस्थान के योग्य हैं ? कौन ऐसा काम इन्होंने किया है ? ये लोग वही हैं जिनकी उँगली और कान महाराष्ट्रीय राजपूत वीरों ने काट कर जीवित छोड़ दिया था।

औरंग०:-फरेब और धोखे से शिकस्त देना मर्दानगी नहीं है।

शिवा०:-अपनी २ तर्कीब है। क्या सम्राट ने इसका अनुसरण नहीं किया ? क्या सम्राट बनने के लिये भाइयों का बध, पिता का बन्दी करना उचित था ?

औरंग०:-हाँ, बेशक। और वह सिर्फ इस ग़रज़ से कि वे लोग मुल्क का इन्तज़ाम करने के क़ाबिल न थे।

शिवा०:-यदि साम्राज्य की रक्षा के लिये ये आचरण उचित माने जा सकते हैं, तो फिर स्वाधीन हिन्दू राज्य को विधर्मियों से बचाने के लिये जिस नीति का शिवाजी ने पालन किया वह भी अनुचित नहीं कही जा सकती।

औरंग०:-आपकी जवांमर्दी और बहादुरी की दिल से क़द्र करते हुए मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि इस वक़्त आप पूना में नहीं दिल्ली में हैं। इस मौक़े पर जो कुछ आपके साथ इनायतें की गई हैं उनके लिये आपको मशकूर होना चाहिये।

शिवा०:-मनुष्य में दृढ़ता होना चाहिये, फिर उसके लिये जैसा पूना वैसी दिल्ली, जैसा शेर तैसी बिल्ली। साथ ही यह भी कहदेना आवश्यक है कि ऐसे पंचहजारी मेरे यहां सैकड़ों पड़े हैं जो शाइस्ताखाँ और अफज़लखाँ के समान तलवार चलाने में दुर्बल नहीं हैं। केवल महाराज जयसिंह के वचनों पर विश्वास करके यहाँ चला आया था। सम्राट इस पर फिर विचार करें। अब मैं बिदा चाहता हूँ।

[परदे का गिरना]

आठवाँ दृश्य

जनार्दनदेव का घर

[सरयूबाला का रघुनाथ के लिये चिन्ता करते हुए एक सहेली के साथ आना]

गाना

[तर्ज थेटरः—जाओ सखी सइयां को ले आओ......]

सरयू०ः—दो०ः—जा चित में चिन्ता बसे, चेत चैन हर जाय।
या दुख की दारू कहा, धैर्य धरो कस जाय॥
जाओ कोई पिया को ले आओ, प्राण-पति आवे मन्दिरवा।
पीर मोरे पन में उठत है हाँ री।

सखी०ः—धीर धरो दिल न जलाओ मोरी प्यारी।

सरयू०ः—दिल की लगी को बुझाओ, पिया को ले आओ,
कहीं से ढूंढ लाओ पियरवा। जाओ कोई........

सखी०ः—धैर्य धरो। इस प्रकार दुःख करने से क्या होगा। पिता जी भी तुम्हे दुखी देख दुखी रहा करते हैं।

सरयू०ः—क्या करूँ सखी। लज्जावश अपना हाल केवल तुझ से और किसी से कह भी नहीं सकती। जब से शिवाजी के यहाँ उनके अपमानित होने का संवाद मिला है, चित्त और भी घबड़ाता है।

सखी०ः—धैर्य धरो। जगदीश्वर को याद करो, वे ही सब कष्टों को दूर करेंगे। देखो वह पिताजी आ रहे हैं। मुझे भी इस समय एक आवश्यक कार्य है, जाती हूँ। छुट्टी के समय फिर मिलूंगी।

[सखी का जाना। जनार्दन का आना]

जनार्दन०:–सरयू ! मैंने तुझको बाल्यावस्था से पाला है। मुझे भी कुछ अधिकार अवश्य है। आज तुझे तीन दिन से समझा रहा हूँ पर तेरी समझ में नहीं आता।

सरयू०:–पिताजी ! मुझे विवाह की इच्छा नहीं। जीवन भर अविवाहित रहकर आपके चरणों की सेवा करूँगी।

जनार्दन०:–परन्तु तनिक विचार तो सही, जीवन भर कुँआरी अपने पिता के यहाँ कैसे रह सकेगी ? ऐसा भी कहीं हुआ है। मैंने तेरे लिये बड़े परिश्रम से उपयुक्त पात्र ढूँढ निकाला है। राजा जयसिंह का वह प्रधान सेनापति है। मैं उसे वचन दे चुका हूं।

सरयू०:–क्षमा कीजियेगा। लज्जावश जो आज तक नहीं कहा था वह कहना पड़ता है। पिताजी ! कुछ दिन हुए एक और सैनिक को भी आपने इसी प्रकार वाग्दान दिया था। वही हमारे वाग्दत्त पति हैं। अन्य किसी से विवाह करने में व्यभि-चार-दोष होगा।

जना०:–[क्रोधित होकर] वाग्दान दिया था, कुछ विवाह नहीं कर दिया था। वह शिवाजी की सभा में विद्रोही ठहराया जा चुका है। मैं अपनी कन्या एक विद्रोही को नहीं सौंप सकता।

सरयू०:–कुछ भी हो। जिसे मैं अपना स्वामी बना चुकी वही मेरे स्वामी हैं अन्य कोई नहीं। यदि विवाह के बाद यह कलंक उन पर लगता तो उस समय आप क्या करते।

जना०:—उस समय जो भाग्य में बदा होता सो होता, परन्तु जान बूझकर ऐसा कभी नहीं हो सकता।

सरयू०:—तो याद रखिये, आपको एक चिरपालित कन्या के मरने का दुख होगा।

जना०:—तो क्या तेरे लिये मुझे अपमानित होना पड़ेगा। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। आज तुझे और अवकाश दिया जाता है। यदि कल तू राज़ी न हुई तो फिर इस विषय में तेरी एक न सुनी जायगी, और तुझे ज़बर्दस्ती विवाह करना पड़ेगा?

[जनार्दन का जाना]

सरयू०:—जाइये पिताजी, जाइये। आपको इस अभागिनी के लिये कदापि अपमानित न होना पड़ेगा। सरयू वही करेगी जिसमें आपको दुख न हो। परन्तु याद रखिये पिता! सरयू जिसे तन, मन, धन अर्पण कर चुकी उसके अतिरिक्त दूसरे की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखेगी। आप अभी सती स्त्रियों के चरित्र को भली भांति नहीं जानते हैं। [जाना]

[परदे का उठना]

नवाँ दृश्य

बंदीगृह

[शिवाजी, शम्भुजी, रघुनाथ पन्त न्यायशास्त्री का बैठे दिखाई देना]

शिवा०:-[खड़े होकर क्रोध से] दग़ाबाज़ औरंगज़ेब ! तू ने इसी अभिप्राय से मुझे बुलाया था। संदेह तो मुझे पहले ही हुआ था। अब तेरे आचरणों को देख वह संदेह निश्चय में परिणत हो गया। मैंने यात्रा के लिये तुझ से आज्ञा मांगी उस पर तूने नाहीं कर दी। इससे स्पष्ट है कि तेरा विचार सदैव बंदी रखने का है। कोई चिन्ता नहीं। अब यहां से निकलने का अव्यर्थ उपाय करूँगा। [रघुनाथ पन्त से] अभी जो कुछ निश्चय हुआ है उसी के अनुसार कार्य कीजिये। सेना को स्वदेश लौट जाने के लिये एक पत्र औरंगज़ेब को फिर लिखकर भेजिये। यदि अनुमति मिल जाय तो सेना को महाराष्ट्र देश लौट जाने की आज्ञा दीजिये। इसके बाद मैं अपने निकलने का उपाय करूँगा।

तन्नजी०:-जो आज्ञा।

[तन्नजी का जाना]

शिवा०:-औरंगज़ेब ! दुष्ट औरंगज़ेब !! याद रख, तूने शिवाजी को चालाकी से बन्दी नहीं बनाया है बल्कि साँप के बच्चे से खेलना आरम्भ किया है। तू समझता है कि शिवाजी आजन्म बन्दीगृह में

रहने के भय से हार मान कर संधि की प्रार्थना करेगा। कदापि नहीं। चकमे से तूने शिवाजी को बन्दी बनाया है, शिवाजी भी इस कला में निरा शिशु नहीं है। याद रख, अब वह दिन भी निकट है जब तू शिवाजी को महाराष्ट्र देश में एक ऐसी अग्नि के साथ देखेगा जिसमें देखते २ दिल्ली साम्राज्य जल कर भस्म हो जायगा और तेरे किये धरे कुछ भी न हो सकेगा। याद रख, महाराष्ट्र देश स्वाधीन है और सदैव स्वाधीन रहेगा।

[रघुनाथ का सन्यासी के भेष में आना]

संन्या०:-अवश्य, महाराष्ट्र देश स्वाधीन है और सदैव स्वाधीन रहेगा।

शिवा०:-[आश्चर्य से उस ओर देख कर] कौन, गोस्वामीजी! आहा, इस समय आपको देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। कहिये रायगढ़ में तो सब कुशल मंगल है? आप यहाँ कैसे आये?

संन्या०:-महाराज! रायगढ़ में सब कुशल है। आपने जिन मंत्रियों को राजभार सौंपा है वे सब बड़ी बुद्धिमानी से कार्य कर रहे हैं। उनके प्रबन्ध में अमंगल होने की सम्भावना नहीं है। यहां आने के संबंध में मैंने आप से पहले ही कहा था कि मुझे व्रत-साधन के लिये देश विदेश घूमना ही पड़ता है।

शिवा०:-परन्तु फिर भी आप बिना कारण इस प्रकार नहीं आ सकते।

संन्या०:-अच्छा, निवेदन करता हूं। परन्तु पहले आप

यह बता दें कि जब से आप यहां आये कुशल से तो हैं ?

शिवा०:-शरीर से तो सकुशल हूँ परन्तु मन की कुशल कहाँ ?

संन्या०:-परन्तु जब बादशाह से संधि हो ही गई तब चिन्ता कहाँ ?

शिवा०:-भला मेंढक और सर्प की मित्रता कब तक रह सकती है ? गोस्वामीजी, आप सब कुछ जानते हैं। अधिक मत लजाइये। यदि रायगढ़ में आपका परामर्श ग्रहण कर लेता तो आज इस नीच के फंदे में पड़कर पराधीनता की बेड़ी धारण न करता।

संन्या०:-प्रभू ! आत्मतिरस्कार मत कीजिये। घोड़े का सवार ही गिरता है। भूल हो जाना एक स्वाभाविक बात है। फिर भी आपका दोष नहीं है। आपने सन्धि के वाक्यों पर विश्वास करके सदाचार का व्यवहार किया। यदि ईश्वर ने चाहा तो बादशाह को इसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। महाराष्ट्र देश दिखा देगा कि कपटाचरण का फल ऐसा होता है।

शिवा०:-हमको विश्वास है कि समाचार पाते ही बढ़ती हुई नदी के समान महाराष्ट्रीय वीर उमड़ पड़ेंगे। किन्तु शोक केवल इतना ही है कि वे लोग तो हमारे लिये युद्ध करें और हम इस प्रकार यहां हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें।

संन्या०:-कदापि नहीं। जब वायु को जाल से रोक लेने

की शक्ति औरंगज़ेब में होगी तभी आपको भी बन्दी रख सकेगा। अन्यथा नहीं।

शिवा०:-इससे तो यह निश्चय होता है कि आपने यहाँ से निकलने का कोई उपाय कर लिया है।

संन्या०:-आपके समान बुद्धिमान् मनुष्य से कोई बात छिपी रहना असम्भव है।

शिवा०:-फिर वह उपाय क्या है, यह तो बताइये।

संन्या०:-आज रात को आप छद्मवेष धारण कर निकल चलें। पूर्व की ओर शहरपनाह के पास एक नया फाटक बन रहा है। वहाँ पाड़ बँधी है। उस पर से कूद जाना महाराष्ट्रियों के लिये सहज है। वहाँ से यमुनातट भी निकट है। नदी के पास पहुँच कर आपको एक नाव तैयार मिलेगी। उस पर आपके विश्वासी सैनिक मल्लाहों का भेष धारण किये मिलेंगे। वे आपको मथुरा पहुँचा देंगे।

शिवा०:-मैं आपके इस उपकार को जन्म भर नहीं भूलूंगा। परन्तु इस प्रकार मैं स्वाधीन होना नहीं चाहता। मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे मंत्री और सैनिकगण जो मेरे साथ हैं किस प्रकार औरंगज़ेब के कोपसागर से तर सकेंगे।

संन्या०:-आप अपने पुत्र के साथ चले जाइये। अन्य लोगों के लिये चिन्ता न कीजिये। आपकी सेना यदि दिल्ली में कुछ दिन पड़ी भी रही तो हानि ही क्या है। औरंगज़ेब उनका कर ही क्या सकता है।

शिवा०:-आप नहीं जानते। औरंगज़ेब अपने भाइयों को मारकर सिंहासन पर बैठा है।

संन्या०ः–फिर इसके अतिरिक्त और उपाय कौनसा है ?

शिवा०ः–न हो। मुझे अपने प्राण दे देना स्वीकार है परन्तु यह भीरुता का कार्य मुझ से कभी न हो सकेगा !

संन्या०ः–अन्य कोई उपाय नहीं सूझता।

शिवा०ः–समय दीजिये। शिवाजी को यह पहली ही आपदा नहीं है। शिवाजी उपाय सोचने में कच्चा नहीं है।

संन्या०ः–समय भी नहीं है। आज ही रात को निकल चलिये। कल आपका निकलना कठिन हो जायगा।

शिवा०ः–क्या आपने किसी योगबल से यह जान लिया है ? यदि आपका कथन सत्य भी हो तो शिवाजी का कोई दूसरा वक्तव्य नहीं है।

संन्या०ः–फिर विचारिये। कल सोचने का अवसर नहीं मिलेगा। कल आप क़ैद हो जायँगे।

शिवा०ः–कुछ भी हो। आश्रितों को छोड़कर शिवाजी मुक्त होना नहीं चाहता।

[परदे का गिरना]

दसवाँ दृश्य

औरंगज़ेब का महल

[औरंगज़ेब का आना]

औरंग०:-आहा हा, हा। वह मारा। अब कहाँ जाता है। बेवक़ूफ़ शिवाजी तू अपने को बड़ा अक़्लमंद और चालाक गरदानता था। कहाँ गई वह चालाकी और चकमेबाज़ी। याद रख, अब तू एक ऐसे ज़बरदस्त के क़ब्ज़े में है जिससे छुटकारा ग़ैरमुमकिन है। अब भी इताअत क़ुबूल कर। नहीं तो ज़िन्दगी भर क़ैदखाने में पड़ा सड़ा करेगा। काफ़िर! एक मामूली राजा होने पर तुझे इतना ग़ुरूर। मुझे भी एक भुनगा समझ रक्खा था। मेरी ताक़त का तुझे मुतलक़ अन्दाज़ा न था। ख़ैर, अब आँख खोलकर देख कि औरंगज़ेब किस क़िमाश का आदमी है और कितनी ताक़त रखता है। देख! जो मेरे वालिदमाजिद भी न कर सके वही मैंने कर दिखाया। यह मेरी ही कोशिशों का नतीजा है कि तुझको गिरफ़्तार करके आज हिन्दोस्तान का बादशाह बन गया हूँ।

[पहरेदार का आना]

दर्बा०:-[हाथ जोड़ कर] जहाँपनाह! आक़िल दानिशमंद क़दमबोसी के लिये आये हैं।

औरंग०:-आने दो।

[पहरेदार का जाना। आक़िल दानिशमंद का आना]

दानिश०:–कमतरीन कोरनिश अर्ज़ करता है। हुज़ूर के यह तख़्लिये का वक़्त है। यहां आने की गुस्ताख़ी माफ़ फ़रमाइयेगा।

औरंग०:–दीगरों के नज़दीक ख़्वाह कुछ भी हो लेकिन मेरे नज़दीक आप इज़्ज़त के क़ाबिल हैं। ख़ैर! इस वक़्त आप किस ग़रज़ से आये हैं। बयान कीजिये।

दानिश०:–जहाँपनाह को मुबारकबाद देने।

औरंग०:–किस बात पर?

दानिश०:–यही कि अब तो हुज़ूर के क़ब्ज़े में जुनूबी बाग़ी भी आगया।

औरंग०:–दानिशमंद! आप तो मेरा मक़सद जानते ही हैं कि मुल्क के बड़े बड़े सरदारों की इज़्ज़त करना मैं अपना फ़र्ज़ समझता हूं। गो शिवाजी चालाक और दग़ाबाज़ है लेकिन जवाँमर्द भी है। इसी ग़रज़ से उसे दिल्ली बुलाया है। एक रोज़ उसे दर्बार में बुलाकर इज़्ज़त के साथ रुख़सत करूँगा।

दानिश०:–लेकिन मुझे यह ख़बर मिली है कि अव्वल रोज़ उसकी दर्बार में बड़ी बेइज़्ज़ती की गई और अब वह नज़रबन्द है।

औरंग०:–हाँ। यह बात सही है। उस दिन उसने दर्बार ही में गुस्ताख़ी की थी। इसी से उसे सज़ा दी है।

दानिश०:–मगर जहाँपनाह! अगर शिवाजी के साथ रहम न किया गया और वह हमेशः के लिये क़ैद किया गया तो लोगों को कहने का अच्छा मौक़ा हाथ आ जायगा कि शिवाजी के साथ बेइन्साफ़ी कीगई।

औरंग०:-लोगों के कहने का मुझे ख़याल नहीं। बनज़र इंसाफ़ तम्बीह कीगई अब इज़्ज़त भी की जायगी।

[पहरेदार का आना]

पहरे०:-जहाँपनाह का मर्तबा आली। हुज़ूर! रामसिंह आये हैं।

औरंग०:-आने दो।

[पहरेदार का जाना। रामसिंह का आना]

राम०:-यद्यपि इस समय आप से भेंट करना उचित नहीं था परन्तु पिताजी के पास से एक भयंकर ख़बर आई है। उसी को सुनाने आया हूं।

औरंग०:-यही न कि उन्होंने फ़ौजी मदद और मांगी है। इसके लिये तो उन्होंने मुझे भी लिखा है।

राम०:-जी हाँ। गोलकुंडा ने बीजापूर का साथ दिया है। गोलकुंडा का सेनापति नेकनामख़ाँ अपनी बेशुमार फ़ौज लेकर पहुँच गया है। पिताजी ने अपने पास कम सेना होने से आपको लिखा। बिना सेना भेजे बीजापूर पर जय पाना असम्भव है।

औरंग०:-इस वक़्त सिपाह कम होने की वजह से उनकी मदद करना ग़ैरमुमकिन है। आपके वालिद तो अपने को बहादुर बताते थे, क्या अपनी फ़ौज से वे बीजापूर फ़तह नहीं कर सकते?

राम०:-यदि यह सम्भव होता तो कभी सम्राट को कष्ट न देते। इस संकट के समय सहायता करना आवश्यक है। यदि ऐसा न हुआ तो उनका बच कर आना असम्भव है।

औरंग०:-लेकिन जब फ़ौजही नहीं है तब मदद क्योंकर

की जा सकती है। आप उन्हें खुलासा तौर पर लिखदें।

राम०:-जो आज्ञा। इसके अतिरिक्त एक प्रार्थना और है।

औरंग०:-बयान करो।

राम०:-दिल्ली आते समय पिताजी ने शिवाजी से कहा था कि उन्हें दिल्ली में कोई कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। राजपूत अपने वचन का बड़ा पास करते हैं। इस लिये पिताजी की और मेरी यही प्रार्थना है कि यदि शिवाजी से कोई अपराध हो गया हो तो प्रभू उसे क्षमा कर दें और शिवाजी से कोई अयोग्य व्यवहार न करें।

औरंग०:-बादशाह वही करेगा जो उसे मुनासिब मालूम होगा। आप किसी क़िस्म की फ़िक्र न करें। अच्छा, अब आप लोग भी जाइये और मैं भी जाता हूं।

[सब का जाना]

[परदे का उठना]

ग्यारहवाँ दृश्य

बंदीगृह

[शिवाजी अपनी शय्या पर पड़े पेट में दर्द के कारण हाय २ कर रहे हैं। एक दास पास ही बैठा है]

शिवा०ः—मुझे प्यास लगी है, थोड़ा जल दो।

[दास का जल देना। शिवाजी का जल पीकर फिर लेट रहना। एक पहरेदार का आना]

पहरेदारः—महाराज ! बादशाह ने एक हकीम को आप के इलाज के लिये भेजा है।

शिवा०ः—[स्वयं] बादशाह और मेरे इलाज के लिये हकीम भेजे—असम्भव। अवश्य मेरे मारने के लिये यह जाल रचा गया है। [प्रकट] कई योग्य वैद्य मेरा इलाज कर रहे हैं। मैं हिन्दू हूं,इस लिये हिन्दू वैद्यों के अतिरिक्त और किसी की दवा नहीं खा सकता। बादशाह की इस कृपा के लिये उन्हें सैकड़ों धन्यवाद दे रहा हूं।

[तानजी का हकीम के भेष में आना। शिवाजी का हकीमजी को देख मन ही मन क्रोधित होना। पहरेदार और दास का जाना]

शिवा०ः—[क्रोध को दबाते हुए] आइये हकीमजी, विराजिये।

[हकीमजी का शय्या के पास बैठ कर नब्ज देखना]

हकीम०ः—[नब्ज देखते हुए] महाराज ! पहरेदार से जो कुछ आपने कहा था हमने सब सुना। आप मुसल-

मानी दवा नहीं खाना चाहते तो न सही लेकिन इंसानी ज़िन्दगी की हिफ़ाज़त करना हमारा काम है। आप के कैसा दर्द है?

शिवा०:—जानता नहीं यह कैसी दुखदाई व्यथा है। सारा शरीर अग्नि के समान जल रहा है।

हकीम०:—दर्द की बनिस्बत फ़िक्र से जिस्म ज्यादः जलता है। क्या आप को यही तकलीफ़ तो नहीं है? [कुछ सोच कर] आप की आवाज़ जिस क़दर कमज़ोर है उतनी नब्ज़ कमज़ोर नहीं है। बलिक खून की रफ़ार बहुत तेज़ है। क्या यह आप का बहाना तो नहीं है?

शिवा०:—और भी कई वैद्यों ने यही रोग बताया है। इस कठिन पीड़ा का कोई लक्षण तो है ही नहीं, जिस से जाना जाय। किन्तु शरीर अवश्य दिन २ कमज़ोर होता जाता है और मृत्यु समीप आई हुई जान पड़ती है।

हकीम०:— हमारे यहां की किताबों में दर्द की एक हज़ार एक क़िस्में लिखी हैं। उसी में एक दर्द का नाम है "पेबहा बरगिरफ़ा ज़ेर बग़ल"। मुजरिम अपने 'जुर्म को छिपाने के लिये इसी दर्द का सहारा लेते हैं। इसकी भी दवा है। मैं दवा आप को दूंगा।

शिवा०:—दवा का गुण क्या है?

हकीम०:—यही कि अगर मर्ज़ होगा तब तो मर्ज़ से वरना ज़िन्दगी से हाथ धोना पड़ेगा।

[हकीम जी का कटोरे में दवा बना कर देना]

हकीम०:—लीजिये दवा तैयार है।

शिवा०:-[कटोरा दूर फेंक कर] मुसलमान का छुआ हुआ पानी हम नहीं पीते।

हकीम०:-इस तरह हाथ चलाना कमज़ोरी की निशानी नहीं कही जा सकती।

शिवा०:-रोगी को चिढ़ाने का यह फल है।

[शिवाजी का एक चपत हकीमजी के सिर पर जमाना और दाढ़ी पकड़ कर खींचना। दाढ़ी का हाथ में रह जाना। हकीम अर्थात् तन्नजी का जोर से हँसना]

तन्न०:-प्रभू ! क्या सदैव चिकित्सकों को इसी प्रकार पारितोषिक दिया करते हैं। ऐसी अवस्था में तो रोगी के पहले चिकित्सक ही मर जायगा। आप की वज्रसमान चपत से मेरा सिर अभी तक घूम रहा है।

शिवा०:-[आश्चर्य से] कौन, तन्नजी ! भाई सर्प के साथ खेलने से कभी २ दुख भी भोगना पड़ता है।

[दोनों का गले मिलना]

यवनिका पतन

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य

बंदीगृह

[शिवाजी, शम्भुजी तथा तन्नजी मालश्री बैठे हैं। सामने मिठाई के दो बड़े झाबे तथा कई खाली बड़े २ झाबे रक्खे हैं]

शिवा०:-औरंगज़ेब ! मूर्ख औरंगज़ेब ! ! देख, तू अब तक शिवाजी को न पहचान सका। सुन, और ध्यान देकर सुन ! मैं वास्तव में बीमार नहीं था, केवल अपने निकलने के लिये ढोंग रचा था। ईश्वर की कृपा से बात पूरी उतर गई और अब वह समय भी निकट आगया है जब तू माथे पर हाथ रखकर अपनी बेवक़ूफ़ी के लिये रोवेगा। ईश्वर की कृपा से अब तुझे शीघ्रही मालूम हो जायगा कि विश्वासघात का परिणाम कैसा होता है।

[दो दासों का आना]

पहला दास०:-आज्ञानुसार मिठाई पहुँचा आया।

शिवा०:-कुछ उत्तर दिया है ?

दूसरा दास०:-हाँ, आपके आरोग्य लाभ करने पर प्रसन्नता प्रगट की है और आपको धन्यवाद दिया है।

शिवा०:—अच्छा ये दो झाबे महाराज जयसिंह के यहां दे आओ। कह देना कि आरोग्य-स्नान करने के उपलक्ष में यह मिठाई भेजी है।

[दोनों दासों का झाबे उठाकर लेजाना]

शिवा०:—आगया ! निकलने का समय आगया। अब शीघ्र प्रस्थान करना चाहिये। भेद खुल जाने पर विपत्ति का सामना करना पड़ेगा। (तन्नजी से) मैं और शम्भुजी इन झाबों में बैठे जाते हैं। आप इनको उठवाकर उसी जंगल में ले जाइयेगा।

[शिवाजी और शम्भुजी का झाबों में बैठ जाना। तन्नजी मालश्री का झाबो के मुँह बन्द करके दासों से उठवाकर लेजाना]

[परदे का गिरना]

दूसरा दृश्य

जंगल

[सरयूबाला का जोगिन के भेष में हाथ में वीणा लिये हुए आना]

गाना

[तर्जः—पीतम पद पंकज प्राणाधार ... ...]

दर्शन बिन तुम्हरे प्राणाधार, प्राणाधार, प्राणाधार रे,
केहि कारण सुध मोरी बिसारी रे।
स्वाती बिन चातक जैसे, जीवन बिन प्राण तैसे।
वैसेही दासी बिन रघुनाथ, बिन रघुनाथ, बिन रघुनाथ रे।

सरयू०:—हाय किससे पूंछूं ? कौन मुझे उस सुन्दर मोहिनी मूर्ति का पता बतावेगा। हा प्राणेश्वर ! क्या बिलकुल ही भूल गये। तुम्हारेही लिये घरबार छोड़ा, तुम्हारेही लिये जोगिन हुई और तुम्हारेही नाम की माला दिन रात जपा करती हूं। केवल तुम्हारे मिलने की अभिलाषा से अभी तक जीवित हूं। प्राणेश्वर ! शीघ्र पधारो, और सरयू को कष्ट से उबारो। यह दासी तुम्हारे दर्शन की प्यासी है। इसी की सारी उदासी है। दीनानाथ ! दीनबन्धु ! ! मेरी आह का असर क्यों नहीं पड़ता ? सर्वस्व जिस प्राणप्यारे पर निछावर किये उन्मादिनी बनी घूमती हूं वह प्रेमडोरी में बँधकर क्यों नहीं खिंच आता, विषम विरहानल पर प्रेमवारि क्यों नहीं बरसाता ?

गाना

[तर्ज़ः—मोहे पिया की डगरिया बतादो सखी]

मोहे पिया की नगरिया बतादो कोई, राह तकत मैं हार गई ।
गये जब से नहीं धीरज मन में, नहीं नींद परत मोरे नयनन में,
लगी ज्वाला बिरहानल की तन में, हाय हूक यह कैसी उठी मन में ।
मोहे पिया की सुरतिया दिखादो कोई, राह तकत.........
मोहे देख हसेंगे पुरबासी, भई तुम्हरे ही कारण बनबासी,
कहो कैसे जियेगी यह दासी, है तुम्हरे ही दर्शन की प्यासी,
मोहे पिया की खबरिया बतादो कोई, राह तकत.........

[जाना । परदे का उठना]



तीसरा दृश्य

जंगल

[चार दासों का दो झाबे उठाये हुए आना और उतार कर रखना तथा झाबों का मुँह खोलना। महाराज शिवाजी तथा शम्भुजी का बाहर निकलना। दासों का झाबे उठाकर ले जाना]

शिवा०ः—पापिष्ठ औरंगज़ेब ! अत्याचारी सम्राट !! शिवाजी को तू ने सदा के लिये क़ैद करने का विचार किया था। तू अपनी बुद्धिमत्ता में भूला हुआ था। किन्तु ईशानी की महिमा नहीं जानता। देख, आज उसी की कृपा से उसका सेवक फिर स्वाधीन हो गया। भगवान ! मुझ में तुम्हारी भक्ति के सिवा कोई शक्ति नहीं। तुम्हारी ही अनुग्रह से सनातन-धर्म और हिन्दू-स्वाधीनता का यह सेवक फिर धर्मघाती सम्राट को दंड देने का आयोजन करेगा। जगदाधार आपके अतुलित औदार्य्य का बखान नहीं हो सकता। जीवन तो जलबुद्बुद है। इसकी कोई चिन्ता नहीं थी। किन्तु दीनबन्धु! जिस कार्य के लिये आपने भेजा था, वह अधूरा ही रह जाता। गुरुदेव श्री समर्थ रामदास की कामना भी व्यर्थ होती। यह कैसे सम्भव था। इसी से फिर छुटकारा हुआ। आपकी इच्छा न

होने पर सब चतुरता बेकार होती । बारम्बार आपके चरणों में नमस्कार है, ईशानी की जय-जयकार है, और सम्राट को धिक्कार है।

[शिवाजी और शम्भुजी का कुछ दूर जाना । पीछे से तीन मुसल्मान सैनिकों का आकर रोकना]

पहला सै०:-कौन जाता है ? इधर आओ।

[शिवाजी और शम्भुजी का आना]

शिवा०:-गोस्वामी ।

पहला सै०:-कहां से आते हो ?

शिवा०:-दिल्ली नगर से ।

दूसरा सै०:-हम दिल्ली जायँगे । रास्ता भूल गये हैं। पहले चल कर रास्ता दिखा दो फिर जाना ।

[शिवाजी का कुछ उत्तर न देना]

पहला सै०:-इसको मैं पहचानता हूं । शाइस्ताखां की मातहती में जब मैं लड़ रहा था तब इसे देखा था। मैं सही कहता हूं, यह गुसाईं नहीं है ।

दूसरा सै०:-फिर कौन है ?

पहला सै०:-मेरे ख़्याल में यह शिवाजी है । क्योंकि दो शख़्सों की आवाज़ एक सी नहीं हो सकती ।

तीसरा सै०:-बेवक़ूफ़ कहीं का। शिवाजी तो दिल्ली में क़ैद है ।

पहला सै०:-उस वक़्त मेरा भी ख़्याल था कि शिवाजी सिंहगढ़ के क़िले में छिपा हुआ है । लेकिन एकबारगी उसने पूने को ख़ाक में मिला दिया ।

दूसरा सै०:-हुज्जत से क्या फ़ायदा । सिर का कपड़ा हटा कर देख लो पता चल जाय ।

[तीसरे सैनिक का शिवाजी की पगड़ी उतारने के लिये हाथ बढ़ाना। शिवाजी का घूंसा मारना। सैनिक का बेहोश होकर गिरना। अन्य दो सैनिकों का तलवार निकाल कर शिवाजी पर वार करना। पीछे से आये हुए दो तीरों से दोनों सैनिकों का मरजाना। रघुनाथ का गोस्वामी के भेष में आकर शिवाजी के चरणों पर गिर पड़ना। शिवाजी का उठाकर हृदय से लगा लेना]

रघु०:–राजन्! छद्मभेष धारण करने के लिये क्षमा कीजिये। मैं गोस्वामी नहीं, आप का पुराना दास रघुनाथ हवलदार हूं। मैंने आप की सेवा की है और आजन्म करता रहूंगा। इसके सिवा और कोई कामना नहीं है। यदि कभी कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा कीजिये और आश्रय दीजिये।

शिवा०:–रघुनाथ! रघुनाथ!! शिवाजी तुम्हारे निकट सैकड़ों दोषों का अपराधी है। तुम्हारे ऊपर जो मैंने संदेह किया था उसे स्मरण करने से मेरा हृदय फटा जाता है। शिवाजी जब तक जीवित रहेगा तुम्हारे गुण कभी नहीं भूलेगा।

[परदे का गिरना]

चौथा दृश्य

गोकरन किसान का घर

[सरयूबाला का आना]

गाना

सोहनी

आओ कंथ मम प्राणाधारे, तुम बिन तलफत प्राण हमारे।
जिमि जल बिन नहीं जियत मीन कहुँ, कैसे जिऊं बिन नाथ तुम्हारे।
नहिं सोहात रघुनाथ बिना कछु, घर बन आदि डरावनो सारे।
डूबत हूं मँझधार प्राणपति, वेगि धाय मोहिं लेहु उबारे।
बहु विलंब मोहिं राह तकत भई, अंकहि भेंटि करहु दुख न्यारे।

सरयू०:-जगदीश्वर ! तुम्हारी माया अपार है। राजा को रंक और रंक को राजा बनाने का तुम्हें पूर्ण अधिकार है। तुम्हारी ही कृपा से अपने मन की चंचलता को अनेक कष्ट सहते हुए शान्त रख सकी हूं। यदि तुम्हारी कृपा होगी तो अब उनके दर्शन भी करूंगी। परन्तु हा प्राणेश्वर ! तुम्हारे ही विरह में यह कष्ट सह रही हूं। जिसने कभी घर से पैर नहीं निकाला था, वही जोगिन बन कर बन २ मारी २ फिरी और अंत में एक किसान के यहां दासी बन कर रही। भला हो इस गोकरन किसान का, जिसने मुझे आश्रय दिया, अपनी कन्या मालती से अधिक प्यार किया। [गोकरन की कन्या मालती का आना]

मालo:-दीदी ! सोच क्या रही हो, चलो न आज भी कल की तरह नदी में स्नान कर आवें।

सरयूo:-नहीं। अम्मा ने मना कर दिया है कि अब से घाट पर न जाना।

मालo:-चलो, मां को ख़बर भी न होगी।

सरयूo:-नहीं, जिस बात को मां ने मना किया है उसके करने से क्या लाभ।

मालo:-दीदी ! क्या मेरी मां तेरी भी मां है।

सरयूo:-हां !

मालo:-नहीं, ठीक ठीक कहो।

सरयूo:-हां २, मेरी भी मां है।

मालo:-नहीं, दीदी तुम तो राजपूत-स्त्री हो, किन्तु मैं राजपूत-कन्या नहीं हूं।

सरयूo:-फिर जान बूझकर क्यों पूछती हो।

मालo:-पूछने का यही कारण है कि तुम मेरी मां को "मां" कह कर क्यों पुकारती हो ?

सरयूo:-सुनो ! जब मैं जोगिन होकर यहां आई उस समय तुम्हारी मां ने मुझे अपने यहां रक्खा। तुम्हारे समान मेरा लालन पालन किया तो क्या उन्हें मैं मां कहकर भी न पुकारूं।

[सरयूबाला की आंखों में आंसू भर आना]

मालती:-ऐं, यह आंसू कैसे ? बात ही बात में रोने क्यों लगीं ?

सरयूo:-नहीं बहिन, रोऊंगी क्यों।

मालती:-तेरी आंखों में आंसू देख मेरा भी जी उदास हुआ जाता है।

सरयू०:–[मालती को गले लगाकर] तू मुझे बड़ी प्यारी लगती है।

मालतीः–और तू भी मुझे प्यारी लगती है। अच्छा यह तो बता, तू मुझे सदा प्यार करेगी, कभी भूलेगी तो नहीं?

सरयू०:–हां। परन्तु तू मुझे एक दिन भूल जायगी।

मालतीः–भला वह कब?

सरयू०:–जब तेरा वर आवेगा।

[गोकरन की स्त्री का आना]

गो० स्त्री०:–अरी मालती! तुम दोनों यहां क्या कर रही हो। कुछ खाने की भी सुध बुध है?

[गोकरन का आना]

गोकर०:–ज़रा चुप हो जाओ और अपने पुत्र का सुसंवाद सुन लो।

गो० स्त्री०:–आहा! जल्दी कहो, भीम जी का क्या संवाद है?

गोकर०:–शीघ्र ही आता है। वह शिवाजी के साथ दिल्ली गया था। आज सुना है कि दुष्ट बादशाह के हाथ से बचकर शिवाजी यहां लौटे आ रहे हैं। इस लिये भीम भी उन्हीं के साथ होगा।

गो० स्त्री०:–आहा! भगवान करे ऐसा ही हो। एक वर्ष हुआ उसे नहीं देखा।

गोकर०:–सुना है भीम सकुशल है और रघुनाथजी हवलदार के अधीन कार्य करता है। रघुनाथजी का भी हाल मिला है। जिस दिन रघुनाथजी शिवाजी से अपमानित हुए थे उसी दिन हमारे

पुत्र ने कहा था कि रघुनाथजी निर्दोषी हैं। हम उन्हें भली भांति जानते हैं। राजा ने भ्रम में पड़ कर उन्हें अपमानित किया है। जब उन्हें मालूम होगा तब अवश्य पछतायँगे।

गो० श्री०:-हां मुझे भी याद आ गया। मुझ से भी यह दुख समाचार भीम ने कहा था। अच्छा रसोई तैयार है चलो भोजन कर लो।

[सब का जाना] [परदे का गिरना]

पांचवां दृश्य

जंगल

[रघुनाथ हवलदार का आना]

गाना

[तर्ज थियेटरः-कैसे हमरी दिलजान...]
कैसे सुमिरे हरिनाम बिना नर जग में सुख पाये,
काम क्रोध लोभ मोह मद और माया जाल जीवहि रहत हैं
लिपटाये, नर जग में सुख पाये...
गाओ गोविन्द गुण, पाओ अमित फल, सजन सुहाओ,
नाम हिये ध्याओ, चरणन मन लाओ,
"व्रजप्यारे" ध्यान मान रे दुख सब ही मिट जाये,
नर जग में...

[चन्द्रराव का आना]

चन्द्र०ः-रघुनाथ !

[रघुनाथ राव का चकित होकर देखना]

चन्द्र०ः-इस जगत में हम तुम दोनों साथ नहीं रह सकते। एक को अवश्य मरना होगा।

रघु०ः-चन्द्रराव ! कपटाचारी चन्द्रराव !! तुम्हारे दोषों का दंड कुछ भी हो परन्तु मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। अब तुम ईश्वर से क्षमा मांगो।

चन्द्र०:–बालक की दी हुई क्षमा हम ग्रहण नहीं करते। अब तुम और अधिक नहीं जीवित रह सकते हो। इस लिये जी लगा कर मेरी दो बातें सुन लो। जन्म ही से तुम हमारे शत्रु हो और हम भी तुम्हारे परम शत्रु हैं। हम तुम्हारी दशा लड़कपन ही से जानते हैं। हज़ारों दफ़ा तुम्हारा सिर काट लेने का इरादा किया।

[शिवाजी का आना और एक वृक्ष की आड़ में छिप जाना]

परन्तु ऐसा न करके तुम को देशनिकाले का दंड दिलवाया। तुम्हे विद्रोही बनाकर अपमानित कराया। अब फिर तुम उन्नति करके सेना में सम्मिलित हुए हो। यह चन्द्रराव से कभी नहीं देखा जा सकता। याद रक्खो, जब तक तुम्हारा रुधिर पान न करूंगा, संतोष न होगा।

रघु०:–पामर! दूर हो। नहीं तो मैं अपनी पवित्र प्रतिज्ञा भूल जाऊंगा और तेरे पापाचरणों का उचित दंड दूंगा।

चन्द्र०:–भीरु! अब भी युद्ध से हटता है। सुन ले, उज्जैन की लड़ाई में तेरे पिता का मारनेवाला कोई दूसरा नहीं, यही चन्द्रराव है। देख, जिस तलवार ने तेरे पिता को मारा था आज वही तेरा हृदय भी विदीर्ण करने को तैयार है। तू भी मरने को तैयार हो जा।

[रघुनाथ पर चन्द्रराव का वार करना। रघुनाथ का बचा जाना। रघुनाथ का भी वार करना। दोनों में घमासान लड़ाई। चन्द्रराव के हाथ से तलवार गिर पड़ना। रघुनाथ का भी तलवार फेंक देना। दोनों में मल्ल युद्ध। रघुनाथ का चन्द्रराव को गिरा कर छाती पर चढ़ बैठना]

रघु०:–[हाथ में कटार लेकर] **देख चन्द्रराव ! इस समय तू मेरे बस में है। तुझे यमलोक पहुँचाना मेरे लिये कठिन नहीं है। परन्तु फिर भी मैं अपनी पवित्र प्रतिज्ञा का स्मरण कर तुझे जीवित छोड़े देता हूं और वचन देता हूं कि आज का हाल किसी से न कहूंगा।**

[रघुनाथ का चन्द्रराव की छाती से उतर कर अलग खड़े हो जाना। चन्द्रराव का उठना। शिवाजी का पेड़ की आड़ से निकल कर चन्द्रराव को क्रोध भरी दृष्टि से देखना और संकेत करके अपने चार सैनिकों को बुलाना। सैनिकों का चन्द्रराव को पकड़ कर ले जाना]

[परदे का गिरना]

छठा दृश्य

गोकरन का मकान

[सरयूबाला का फूलों का गहना पहने हुए आना]

गाना

दादरा

पिय प्यारे न आये बहुत दिन बीते।
मन मतङ्ग नहिं धीर धरत है चाहै मिलन उन पीते॥
दो०:-विरहानल बरती विषम चलती काम बयार।
मन मोहित सों तपन अब सही जात नहिं यार॥
देखत राह थकित भये नयना पीर उठत मोरे हीते।
पिय प्यारे न......
दो०:-जोबन नद उमगो अधिक धीर वृक्ष दियो तोर।
हौं बूड़त मँझधार में लेहु पिया सुधि मोर॥
पिय प्यारे न......

[मालती का आना]

मालती:-दीदी! दिन २ तुम निखरती जाती हो। इस का कारण क्या है?

सरयू०:-क्या कहती है?

मालती:-कहती क्या हूं। क्या देखती नहीं।

सरयू०:-हां, तेरे देखने में भूल है।

मालती:-खूब कही। मैं भूलती हूं! अच्छा बताओ, पहले भी कभी अपने बाल फूलों से गूंधे थे?

सरयू०:-पगली कहीं की।

मालती:-मैं पगली हूं कि तू। कंठ में माल, हाथों में मोतियों की लड़ियां, क्या यह मैं नहीं देख रही हूं?

सरयू०:-बहन! झूठी बातें मत बना।

मालती:-खूब! पेड़ की आड़ में छिपकर मीठे २ स्वर में गाती कौन है?

सरयू०:-चल दूर हट।

मालती:-नदी के तीर बैठकर जल में देर तक मुँह कौन देखा करती है?

[सरयूबाला का हँसते हुए दौड़ कर मालती का मुँह बंद कर लेना]

मालती:-ठहर। मैं मां से सब बातें कहती हूं।

सरयू०:-नहीं बहन! तेरे पांव पड़ती हूं, कहना मत।

मालती:-अच्छा एक बात पूछती हूं बता दे।

सरयू०:-पूछ।

मालती:-इस श्रृंगार का कारण क्या है।

सरयू०:-तेरी मां तेरा सिर गूंध कर तुझे गहना कपड़ा पहनाती हैं, सो क्यों?

मालती:-मां कहती हैं कि अगले साल मेरा ब्याह होगा और दूलहा आवेगा।

सरयू०:-बस तो समझ लो, हमारा भी दूलहा आवेगा।

मालती:-सचमुच?

[रघुनाथराव का संन्यासी के भेष में "हर हर महादेव" कहते हुए आना। मालती का संन्यासी को देखकर भाग जाना]

सरयू०:-[प्रणाम करके] प्रभू! आप के दर्शन एक बार जनार्दन के मन्दिर में हुए थे। आज बहुत दिन

बाद दास्यवृत्ति में आप के दर्शन कर रही हूं। पिता ने कलंकिनी कहकर मुझे अलग कर दिया। मेरा कोई दोष नहीं था।

संन्या०:–रघुनाथ के लिये तुम्हे इतना दुख सहना पड़ा।

सरयू०:–नारी जब तक पति का नाम जप सकती है तब तक उसे कोई कष्ट नहीं। क्या आप की उनसे भेंट हुई थी?

संन्या०:–हां।

सरयू०:–उन्होंने क्या कहा?

संन्या०:–रघुनाथ तुम्हे अभी तक नहीं भूले हैं। हमने उन से कहा था कि सरयू राजपूत-बाला है, वह जीवन से यश को अधिक समझती है। वह जब तक जीवित रहेगी तुम्हारा ही नाम रटा करेगी।

सरयू०:–इस पर उन्हों ने क्या उत्तर दिया?

संन्या०:–उत्तर तो कुछ नहीं दिया परन्तु उसी समय से अपने काम में अग्रसर हुए। सुनने में आया है कि उन्हों ने अपने जीवन-मार्ग को अब स्वच्छ कर लिया है।

सरयू०:–[प्रसन्नता से] धन्य जगदीश्वर ! मैं तुम्हे सादर प्रणाम करती हूं।

संन्या०:–इस समय मैं तुम्हारे पास रघुनाथ का एक संदेशा लेकर आया हूं।

सरयू०:–वह क्या महाराज?

संन्या०:–उन्हों ने कहा है कि अब तक सरयू जिसे मन में रक्खे हुए है क्या सामना होने पर उसे पहचान लेगी?

सरयू०:–क्या इस जीवन में उनका स्वरूप भूल सकती हूं ?
संन्या०:–परन्तु वह तो इसके विपरीत देख रहे हैं।
सरयू०:–क्या ?
संन्या०:–यही कि सामना होने पर भी तुम उन्हें नहीं पहचान सकीं।
सरयू०:–मैं आपका मतलब नहीं समझी ?
संन्या०:–[ज़ोर से हँसते और अपनी बनावटी दाढ़ी उतारते हुए] नहीं समझीं तो इधर देखो।
सरयू०:–[दौड़कर] प्राणेश्वर ! क्षमा करना।

[सरयूबाला का मूर्छित हो कर गिरना, रघुनाथ का सभाल लेना]

[सरयूबाला का सचेत होना। गोकरन, भीम, गोकरन की स्त्री, और मालती का आना]

मालती:–[अंगुली से इशारा करके] अम्मा ! दीदी इन्हीं से बातें कर रही थीं।

[भीम का रघुनाथ को पहचान कर सादर प्रणाम करना]

भीम०:–क्षमा कीजियेगा। इस अबोध बालिका ने आपको पहचाना नहीं था।
रघु०:–भीमजी ! आप किसी बात की चिन्ता न करें। मैं आप लोगों का बड़ा कृतज्ञ हूं। अब आज्ञा हो तो जाऊं।
गो०:–नहीं। आज मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये। इस दास का आतिथ्य स्वीकार कीजिये।
रघु०:–मैं आपकी बात टालना नहीं चाहता।

[सब का गाना]

गाना

राग पीलू—ठेका तिताला ।

धन २ भाग्य हमारे आज ।

कटी वियोग निशा अति दीरघ दुःख गयो सब भाज ॥ १
धन्य दिवस अरु घड़ी धन्य यह मानिय धन्य समाज ।
धन २ नेह की नीति निराली धन्य धर्म को साज ॥ २
जाके राज्य बसत हैं सुख सों धन्य शिवा सिरताज ।
कोटिक धन्यवाद है प्रभु को राखत जन की लाज ॥ ३

[सब का जाना] [परदे का उठना]

सातवां दृश्य

राजसभा

[शिवाजी का सिंहासन पर और अन्य सभासदों का अपने २ स्थान पर बैठे दिखाई देना। चन्द्रराव का हथकड़ी बेड़ी पहने दो सैनिकों के साथ आना]

शिवा०:–सभासदगण! चन्द्रराव ही विद्रोही है। इसी ने शत्रु को संवाद दिया था और इसी ने पारितोषिक भी लिया। खेद है कि कलंक निर्दोषी रघुनाथ को लगाया गया। [चन्द्रराव से] विद्रोही चन्द्रराव! तेरी मृत्यु निकट है। तुझे कुछ कहना है?

चन्द्र०:–क्या कहूं! आपकी विचारक्षमता प्रसिद्ध है। एक दिन इसी दोष पर रघुनाथ को दंड मिला था, आज मुझ पर वही कलंक लगाया जाता है। मेरे बाद फिर किसी दूसरे को दंड मिलेगा। परन्तु जब आप इसका भेद जान जायँगे तब आपको अवश्य पछताना पड़ेगा।

शिवा०:–जल्लाद! इसके दोनों हाथ काट डाल जिसमें फिर कभी यह घूस न ले सके, और इसके माथे पर "विश्वासघातक" शब्द लिख दे कि फिर इसका विश्वास कोई न करे।

रघु०:–[हाथ जोड़कर] महाराज! मेरी एक प्रार्थना है?

शिवा०:–निवेदन करो। इस विषय में तुम्हारी प्रार्थना

अवश्य सुनी जायगी। तुम्हारे पिता का भी यही घातक है। यह बात मैंने इसी के मुँह से सुनी है। इसके अतिरिक्त और कुछ कहना है?

रघु०:-महाराज की आज्ञा अटल है। परन्तु मेरी यह आकांक्षा है कि चन्द्रराव को कोई क्षति न पहुँचाई जाय।

शिवा०:-तुम्हारे साथ जिसने अत्याचार किया उसी को तुम क्षमा दिलाना चाहते हो। राजविद्रोह की सज़ा मृत्यु है। वही दंड इसे दिया जायगा। जल्लाद! तुम अपना कार्य करो।

रघु०:-यह दास प्रभु के निकट चन्द्रराव के प्राण की भीख मांगता है। महाराज का आदेश हो जाने पर आज तक कभी किसी ने चूँ नहीं की। मेरी इस ढिठाई को क्षमा कीजियेगा।

शिवा०:-ऐसी भिक्षा देने में मैं असमर्थ हूं। रघुनाथ! इस बार तो मैंने तुम्हे क्षमा किया परन्तु फिर कभी ऐसा करने में असमर्थ हो जाऊंगा।

रघु०:-सेवा से प्रसन्न हो प्रभु ने पुरस्कार देने को कहा था। आज पुरस्कार में चन्द्रराव की प्राण-रक्षा चाहता हूं।

शिवा०:-[कुपित होकर] तुम्हारी सेवा से मैं प्रसन्न अवश्य हुआ था और पुरस्कार भी देने को कहा था। परन्तु क्या आज उसी वचन का लाभ उठा कर शिवाजी का न्याय अन्यथा किया चाहते हो। मेरे सामने से दूर हो।

रघु०:-[खड़े हो कर] जो आज्ञा! यह दास फिर कभी

पुरस्कार देने का कष्ट प्रभु को नहीं देगा। फिर गोस्वामी बनकर देश २ भिक्षा मांगता फिरेगा।

[रघुनाथ का धीरे २ जाना]

मंत्री०:—[हाथ जोड़ कर] चन्द्रराव रघुनाथ का बहनोई है। इसी से वह उसके प्राण की भिक्षा चाहता है।

शिवा०:—[कुछ विचार कर] रघुनाथ ! ठहरो। [चन्द्रराव से] चन्द्रराव ! शिवाजी के राज्य से निकल जाओ और दूसरे देश में जाकर मित्र से विश्वासघात करो, षड्यन्त्र और विद्रोहाचरण द्वारा उसका नाश करो, शत्रुओं से पारितोषिक लो और अपना पापमय जीवन व्यतीत करो।

[सैनिकों का हथकड़ी खोल लेना। चन्द्रराव का धीरे २ रघुनाथ के पास आना]

चन्द्र०:—बालक ! मैं तुम्हारी दया नहीं चाहता, और न तुम्हारे दिये हुए जीवन को धारण ही किया चाहता हूं।

[चन्द्रराव का रघुनाथ की कमर से कटार निकाल कर अपने कलेजे में भोंक लेना]

[परदे का गिरना]

आठवां दृश्य

श्मशान

[आगे २ लक्ष्मी का और उसके पीछे रघुनाथ का आना]

गाना

लक्ष्मीः०- सुखमासदन हे प्राण के धन,
मोहि छोड़ चले हो आज कहा।
शृंगार सुहाग के साथ गया,
विधवा का साजो समाज कहा।
मर तो चुकी मैं जीते ही जी,
बिन राजा के यह राज्य कहा।
यह जीवन जीवननाथ का है,
इस जीवन से अब काज कहा।
लाज थी दासी की जिनसे ढकी,
जब वे ही नहीं तब लाज कहा।
सुख जो कुछ था सब खो बैठी,
मेरे दुःख का अब अन्दाज़ कहा।

लक्ष्मी०:-सच है भाई, तुमने अपने वचनों का पालन अवश्य किया। अवसर मिलने पर भी किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचाई, राजा से प्राण-भिक्षा दिलाई। किन्तु कर्म की रेख को तुम कैसे मेट सकते थे।

रघु०:-लक्ष्मी! तुम बुद्धिमती हो। तुमने धैर्य्य धारण

किया, यह देख मुझे बड़ा संतोष हुआ। मानव-जीवन ही शोकमय है। ईश्वरेच्छा! चलो मेरे घर चलो। यदि मेरे यत्न से तुम्हारा शोक कुछ भी कम हो जायगा तो मुझे बड़ा हर्ष होगा।

लक्ष्मी०:-भाई! इसमें सन्देह नहीं कि तुम दया की खान हो। परन्तु मेरे लिये तुम्हें अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। स्वयं ईश्वर ने मुझे शान्ति-पथ दिखा दिया है। लक्ष्मी को जो जीते समय प्राणों से अधिक प्यारे थे, वही अब भी उसकी आंखों के तारे हैं।

रघु०:-एक दिन मेरा भी जीवन नैराश्यपूर्ण था। मैंने भी प्राण त्यागने का संकल्प किया था। किन्तु बहन! केवल तुम्हारे ही उपदेशों और स्नेहमय शब्दों ने आत्मघात के भीषण पाप से मेरी रक्षा की थी। आज क्या तुम मेरी बात न मानोगी? क्या भाई का नेहनीर अब तुम्हारे हृदय-सरोवर में नहीं रह गया?

लक्ष्मी०:-भाई! मैं यह बात कभी भूली नहीं। तुम लक्ष्मी को सदा ही से प्यारे हो। परन्तु विचार कर देखो, तुम्हारी और मेरी निराशा में भेद है। तुम ने बहन की बात मानकर अपना कलंक दूर कर लिया। परन्तु आज तुम्हारी बात मानने पर मुझे कलंक से बचने की आशा नहीं है। भइया! स्नेहवश इस समय लक्ष्मी के मार्ग में कांटा मत बनो। मुझे प्राणेश्वर के संग जाने दो। आज लक्ष्मी सती हो कर भाग्यवती होगी। बहन को सहर्ष बिदा दो।

[रघुनाथ को रोता देख कर] भाई ! पिता के समान साहसी होने पर भी तुम्हारी यह दशा ! शान्त हो, और सहर्ष बिदा दो। स्वामी राह देख रहे होंगे।

रघु०:-तुम्हारे बिना जगत तुच्छ मालूम होगा। इस संसार में फिर रघुनाथ को भाई कह कर पुकारनेवाला कौन रह जायगा। स्नेहमयी लक्ष्मी! कैसे बिदा दूं।

लक्ष्मी०:-तुम वीर हो, वीर-पुरुषों के धर्म का पालन करो। और लक्ष्मी को स्त्रीधर्म का पालन करने दो। नाहीं मत करो। देखो, पूर्व की ओर लालिमा दिखाई पड़ रही है। बिदा दो, अधिक नहीं ठहर सकती।

रघु०:-[रोते हुए] लक्ष्मी ! स्नेहमयी लक्ष्मी !! इस जीवन में मैंने तुझे बिदा दी। जाओ भाग्यवती हो और भारतीय ललनाओं का परम धर्म निबाहो।

[दोनों का गले मिलना। लक्ष्मी का चितारोहण]

रघु०:-[कुछ देर ठहर कर] हा, कैसी प्रचण्ड अग्नि, कैसी विकराल लवें। दौड़ो ! दौड़ो !! मेरी प्यारी बहन को बचालो, इस सर्वग्रासिनी ज्वाला से निकालो। हा, कैसा आश्चर्य ! जो शरीर एक चिनगारी का ताप भी नहीं सह सकता था, आज वही कोमल अंग भीषण वह्नि की गोद में है। किंतु कातरता कैसी! प्यारी माताओ और बहनो ! भारतीय सती ललनाओं का पथ पहचानो, पति से किस प्रकार प्रेम करना चाहिये, मेरी बहन लक्ष्मी से सीखो। सीखो, और अवश्य सीखो। इस लिये कि तुम्हे भारत-माता की संतान होने का दावा है। [कुछ

ठहर कर] हा, अग्नि-शिखा मध्यम होने लगी। लक्ष्मी भी सदा के लिये बिदा हो गई। इस जीवन में अब उससे भेंट होने की कोई आशा नहीं, और मुझे भी संसार में रहने की कोई अभिलाषा नहीं। जा, प्यारी बहन स्वर्ग को जा। अपने ही समान सती स्त्रियों से मन बहला। तब तक मैं भी तेरी चरणसेवा के लिये आता हूं।

[जाना] [परदे का गिरना]

नवां दृश्य

रघुनाथ का गृह

[जनार्दन और रघुनाथ का प्रवेश]

जना०:–वत्स रघुनाथ! शान्त हो। उस दिन अपनी बहन के सती होने पर जब तुम आत्मघात के लिये उद्यत थे तब भी मैंने यही उपदेश दिया था और आज भी मेरा यही कहना है कि, इतनी चिन्ता मत करो। तुम्हारा शरीर दिन २ क्षीण होता जाता है। आज दो मास से मैं तुम्हारी यही दशा देख रहा हूं।

रघु०:–[सम्हल कर] गुरुवर! मैं भी यही चाहता हूं कि चिन्ता-चिता की अग्नि से न जलूँ, अथाह शोक-सागर में डूब कर प्राण न खोऊँ। किन्तु सरल-हृदया बहन लक्ष्मी की याद किसी प्रकार नहीं भूलती।

जना०:–पुत्र! तुम्हारे जीवन पर एक और जीवन निर्भर है। उसका स्मरण करो। जो तुम्हारे सिवा किसी को नहीं जानती, अपना तन मन तुम्हे अर्पण कर चुकी है, उसकी व्यथा की चिन्ता करो। किसी स्नेही की मृत्यु से अधीर होकर घुल २ कर प्राण देना आत्मघात के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं। यदि इसी तरह तुमने अपना अन्त कर दिया तो दोहरे पाप के

भागी बनोगे। एक तो आत्मघात। दूसरे, एक मनोहर कोमल कली को सदा के लिये म्लान करोगे। इस पर भली भांति बुद्धिमान की तरह विचार करो।

रघु०:-पिता! आप ही के सदुपदेश से प्रभावित होकर मैंने अपने मन को बहुत ढाढ़स दिया परन्तु वह मानता ही नहीं, मानो धैर्य धरना जानता ही नहीं।

जना०:-ठीक है। फिर भी उसे समझाना तुम्हारा काम है, शान्त होना ही बुद्धिमानी का नाम है।

रघु०:-परन्तु जब लक्ष्मी की ओर ध्यान आता है, कलेजा मुँह को आता है।

जना०:-यह तुम्हारे अत्यन्त प्रेम का फल है। सुनो वत्स! तुम्हारी बहन लक्ष्मीबाई ने सती होकर स्त्रीजाति की मर्याद रक्खी है, राजपूतरमणी की आन रक्खी है, अपने धर्म की अचल बुनियाद रक्खी है। उसके लिये रोना उचित नहीं। रोना उसके लिये चाहिये जिसने धर्म-कर्म को छोड़ पाप करते हुए इस असार संसार से यात्रा की हो।

रघु०:-इसमें संदेह नहीं। परन्तु अभी यह दुख नया है, धीरे २ घटेगा, समय पाकर मिटेगा।

जना०:-कोई चिन्ता नहीं। तुम स्वयं समझदार हो, अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं।

[भीम का आना]

भीम०:-यह दास प्रणाम करता है।

जना०:-आशीर्वाद। कहो क्या समाचार है?

भीम०:-महाराज ने आप दोनों को लाने की आज्ञा दी है।

जना०:-अच्छा, तो आप हमें बुलाने आये हैं ?

भीम०:-हां, महाराज की आज्ञा पाते ही धाये हैं और बहन सरयूबाला का विवाह कल रघुनाथजी के साथ होगा, यह शुभ संवाद लाये हैं ।

जना०:-रघुनाथ तो बहुत दुर्बल है, वह इस योग्य नहीं कि चल सके । मैं उपस्थित हूं ।

[परदे का उठना]

दसवां दृश्य

[महाराज शिवाजी, जनार्दनदेव और भीम का प्रवेश]

शिवा०:-[जनार्दनदेव की ओर देखकर] कहिये, रघुनाथ का क्या हाल है ? लगी हुई शोकाग्नि कुछ घटती या नहीं ?

जना०:-आपकी कृपा से उद्योग निष्फल नहीं गया। परन्तु अब भी वह अपनी पहली अवस्था में नहीं आया है।

शिवा०:-कोई चिन्ता नहीं। धीरे धीरे विषाद की काली छाया भी दूर हो जायगी, फटी हुई छाती जुड़ जायगी। इस समय आपको बुलाने का एक दूसरा ही कारण है।

जना०:-वह क्या महाराज ?

शिवा०:-मेरी इच्छा है कि शीघ्र ही अपने हाथ से सरयूबाला का विवाह रचाऊं, रघुनाथ को गृहस्थ बनाऊं। सरयूबाला को भी रघुनाथ से सच्ची प्रीति है। उसने रघुनाथ के लिये इतने कष्ट सहे हैं। प्रकृति के नियम के अनुसार अब उन्हें मिलन का सुख भी मिलना चाहिये। आपकी इस विषय में क्या सम्मति है ?

जना०:-जो आज्ञा। परन्तु अभी रघुनाथ का स्वीकार करना असम्भव है।

शिवा०:-उद्योग कीजिये। समझाइये, और शीघ्र ही इस

शुभ कार्य के लिये तैयार कर के मेरे पास लाइये। तब तक मैं भी इस उत्सव की तैयारी कराता हूं।

[महाराज शिवाजी का एक ओर और जनार्दनदेव तथा भीम का दूसरी ओर जाना]

[परदे का उठना]

ग्यारहवां दृश्य

रघुनाथ का गृह

गाना

रघु०:- अरे मन धीरज क्यों न धरै ।
छोटे बड़े सबहिं समझावत नेक न कान करै ॥
हठ कीन्हे कुछ हाथ न ऐहै बनी बात बिगरै ।
जन्म की दुखिया सरयूबाला तापै बिपति परै ॥
गये बूंद सों भेंट न ह्वै है चाहे जौन करै ।
कुल की कीर्ति बढ़ी जेहि कृति सों सो तोको अखरै ॥
शिवा महीपति बहुत बुझायो मूढ़ ताहि निदरै ।
सीख न मानत गुरु ज्ञानिन की किमि दुख सिन्धु तरै ॥
अरे मन......

(सखेद) सभी कहते हैं, धैर्य धरो । किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि कैसे उनकी आज्ञा का पालन करूं। महाराज ने भी कई बार यही कहला भेजा और स्वयं भी समझाने की कृपा की । फिर भी मन मानता ही नहीं, प्यारी बहन की याद बिसारता ही नहीं । जगदीश्वर ! शक्ति दे, कि अपने पूज्यवरों की इच्छा पूर्ण करूं।

[जनार्दन देव का आना]

जना०:-लाल ! क्या हाल है, इस समय मन की गति की कौन ताल है ?

रघु०:-जननी जनक के वात्सल्य की प्रस्फुटित कलिका मनो।
शिशुकाल के शुभ इतिहास की स्पष्ट सी गुटका गनो॥
भूले कहो कैसे भला अब शोच उसके नाश का।
धीरज बँधा कर था उसी ने यश बचाया दास का॥

जना०:-धैर्य धरो! शान्त हो!! जो होना था हो चुका। तुम्हारी सहोदरा ने पतिव्रताओं के प्रशस्त पथ को पकड़ कर हिन्दू नारी और हिन्दू धर्म का मस्तक ऊंचा किया है, अपने कुल का गौरव बढ़ाया है। इसका तुम्हें गर्व होना चाहिये, शोकातुर होने के बदले सुख की नींद सोना चाहिये।

रघु०:-ठीक है। किन्तु कठिन स्नेह-बंधन को सहज ही कैसे तोड़ सकता हूं, इतनी शीघ्र प्यारी भगिनी के वियोग से कैसे मुँह मोड़ सकता हूं। फिर भी मैं आपकी आज्ञा पालने का प्रयत्न कर रहा हूं।

जना०:-इस समय मैं तुम्हारे पास एक विशेष कार्यवश महाराज का भेजा हुआ आया हूं।

रघु०:-आज्ञा।

जना०:-महाराज की इच्छा है कि कल तुम्हारा और सरयूबाला का विवाह रचावें, दुष्ट औरंगज़ेब की क़ैद से छूटने के उपलक्ष में खुशी मनावें।

रघु०:-किन्तु अभी तो यह असम्भव जान पड़ता है।

जना०:-ऐसा न कहो। प्रजावत्सल नरेश की आज्ञा मानना प्रजा का धर्म है, उसका उल्लंघन करना महानीच कर्म है। उन्होंने तुम्हारा मान रक्खा है। अब तुम्हारा भी यही धर्म है कि उनकी आज्ञा का सम्मान करो।

रघु०:–[गम्भीर चिन्ता के बाद] यदि आप लोग यही उचित समझते हैं तो दास आज्ञा पालने को लाचार है।

अना०:–अस्तु। अब चलना चाहिये। महाराज राह देखते होंगे।

[दोनों का जाना]

[परदे का उठना]

बारहवाँ दृश्य

दर्बार

[महाराज शिवाजी सिंहासन पर बैठे हैं। एक ओर अन्नजीदत्त, सुवर्णदेव, तन्नजी मालश्री, पेशवाजी, मूरेश्वर, जनार्दनदेव, रघुनाथ, गोकरन, भीम इत्यादि बैठे हैं। दूसरी ओर सरयूबाला, गोकरन की स्त्री, मालती इत्यादि बैठी हैं]

शिवा०ः–रघुनाथ ! आज का सा शुभ दिन ईश्वर सभी को दे। तुम भी अपने मन से सब दुखों को भूल कर आनन्दित हो।

रघु०ः-[हाथ जोड़ कर] प्रभु की आज्ञा मानना अपना परम कर्तव्य जान कर ही आज इस उत्सव में सम्मिलित हुआ हूँ।

शिवा०ः–तो क्या मेरी एक इच्छा पूर्ण करके इस महोत्सव के दिन मुझे और भी अधिक आनन्दित करना उचित समझोगे ?

रघु०ः–सेवक को स्वामी की बात टालने का कब अधिकार है, रघुनाथ प्रभु की आज्ञा मानने को तैयार है।

[महाराज शिवाजी का सिंहासन से उतर कर नीचे आना। सब का खड़े हो जाना]

शिवा०ः-[सरयूबाला से] सरयू ! इधर आओ। [रघुनाथ से] देखो रघुनाथ ! मै तुम्हें यह अमूल्यरत्न सौंपता हूँ। इसे बड़े यत्न से रखना। यदि किसी प्रकार का

इसे कष्ट हुआ तो मैं समझूँगा कि तुमने मेरे वचन की अवहेलना की। [सरयूबाला से] सरयू ! अपना इष्टदेव मान कर तुम भी रघुनाथ की सेवा करना। स्त्री के लिये पति ही सर्वस्व है। पति को कष्ट देने से दोनों लोक बिगड़ जाते हैं। आगे बढ़ो और रघुनाथ के गले में जयमाल पहनाओ। ईश्वर तुम दोनों को चिरायु करें और प्रसन्न रक्खें।

[सरयूबाला का रघुनाथ को फूल की माला पहनाना। सब का आशीर्वाद देना]

गाना

[दादरा, तर्ज थेटर]

आओ सखी सब मिल के जाए बलहारी,
मिली दूल्हा को दूल्हन प्यारी,
कैसी जोड़ी मनमानी, है प्यारी सुहानी,
हम जाए सब वारी,
आज खिलीं सेहरे की कलियां प्यारी।

यवनिका पतन,

इति शुभम्।

निवेदन

"लक्ष्मण साहित्य भंडार" का स्थापन व्यापारिक दृष्टि से नहीं हुआ है। समयानुकूल उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित कर यथाशक्ति राष्ट्र-भाषा का भंडार भरना ही हमारा अभीष्ट है। किन्तु मौलिक और गम्भीर पुस्तकों का प्रकाशन हमारी इच्छा की अपेक्षा पाठकों की रुचि और सहायता पर अधिक निर्भर है। ई० १९१७ में "एनी बेसेंट (पूर्व चरित)" प्रकाशित कर हमने श्रीगणेश किया था। लगभग सवा वर्ष के उपरान्त ई० १९१८ के अन्त में "विदेश यात्रा" नामक निबन्ध प्रकाशित हुआ। अनेक अनिवार्य कारणों से गत जुलाई मास तक हम इस ओर यथोचित ध्यान नहीं दे सके। गत जुलाई मास से उचित प्रबन्ध हो गया है। यद्यपि अपना प्रेस न होने के कारण इच्छानुसार शीघ्रतापूर्वक पुस्तकें प्रकाशित करने में हम असमर्थ हो रहे हैं, फिर भी गत सितम्बर मास में "हिन्दू विवाह" नामक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित हुई और आज (जनवरी) प्रस्तुत नाटक हिन्दीप्रेमियों को भेंट करते हैं। आगामी मास के प्रारम्भ में ही "सन्तोष अथवा कृषि मुनि" पुस्तक प्रकाशित होगी। हम उद्योग कर रहे हैं कि और भी शीघ्रता से पुस्तकें प्रकाशित कर सकें। भरोसा है कि प्रयत्न सफल होगा। हम अपनी ओर से कोई त्रुटि नहीं रखना चाहते। छपाई सफ़ाई भी मनोरम होगी और मूल्य भी बहुत उचित रक्खा जायगा।

स्थायी ग्राहक बनाने का भी नियम किया गया है। नियमावली दूसरे पृष्ठ पर पढ़िये। आशा है हिन्दी प्रेमी स्थायी ग्राहक बनकर राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य सर्वथा सम्पन्न बनाने के प्रयत्न में सहायक होंगे। हिन्दी अनुरागियों की सहायता पर ही हमारे प्रयत्न की सफलता निर्भर है।

साह मदनमोहन

——:o:——

लक्ष्मण ग्रंथमाला

छप रहा है ! शीघ्र प्रकाशित होगा !!

" सन्तोषू अथवा कृषि मुनि "

ले० श्रीयुत डा० महेशचरण सिंह बी० ए०, एम० एस० सी०,
भूतपूर्व अध्यापक गुरुकुल, कांगड़ी ।

यह एक आधुनिक जापानी का जीवन चरित है। देखिये स्वार्थत्याग, सच्चाई, अथवा परिश्रम और धीरता के सहारे एक अनाथ निर्धन बालक किस प्रकार ऊँचा से ऊँचा राज कर्मचारी बनकर स्वदेश की सेवा करता हुआ अपने किसान भाइयों की दशा सुधार सकता है। भारतीय ऋषियों के त्याग और निस्स्वार्थ लोक-सेवा का जीता जागता चित्र देखना हो और अपने किसान भाइयों की सेवा करने की अभिलाषा हो तो इस जीवन चरित को अवश्य पढ़िये।

मिलने का पताः—
मैनेजर, लक्ष्मण साहित्य भंडार
चौक, लखनऊ

स्थायी ग्राहकों को सुविधा

१. आठ आना "प्रवेश फ़ीस" जमा कर देने से प्रत्येक सज्जन इस भंडार का स्थायी ग्राहक बन सकता है। वह "प्रवेश फ़ीस" ग्राहक न रहने पर लौटाई नहीं जाती।

२. प्रथम श्रेणीः—जो सज्जन इस श्रेणी के स्थायी ग्राहक बनेंगे उन्हें २५) रु० सैकड़ा कमीशन दिया जायगा। ऐसे ग्राहकों को इस भंडार से प्रकाशित कम से कम चार रुपये (पूरे मूल्य) की पुस्तकें प्रत्येक वर्ष लेना होंगी। वर्ष में इस से अधिक मूल्य की पुस्तकें प्रकाशित होने पर उन्हें लेने या न लेने का अधिकार ग्राहकों को होगा।

३. द्वितीय श्रेणीः—जो सज्जन इस श्रेणी के स्थायी ग्राहक बनना चाहेंगे उन्हें १५) रु० सैकड़ा कमीशन दिया जायगा। ऐसे ग्राहकों को अधिकार है कि वे हमारी कोई पुस्तक लें या न लें।

४. किसी उचित कारण के बिना यदि वी. पी. वापिस किया जायगा तो उसका डाक खर्च आदि दूसरी बार पुस्तक भेजते समय उस में जोड़ दिया जायगा। यदि दूसरा वी. पी. भी वापिस आया तो फिर उनका नाम ग्राहक श्रेणी से काट दिया जायगा।

५. प्रत्येक सज्जन को ग्राहक बनते समय अपना पूरा पता व नाम साफ़ २ लिखना चाहिये। साथ ही वे किस श्रेणी (प्रथम अथवा द्वितीय) के ग्राहक बनना चाहते हैं, यह भी अवश्य लिखना चाहिये।

साह मदनमोहन
मैनेजर, लक्ष्मण साहित्य भंडार
चौक, लखनऊ.

रघुनाथराव।

महाराज शिवाजी के समय का ऐतिहासिक नाटक आपके हाथ में है। पढ़िये, हिन्दी संसार के सुपरिचित

श्रीयुक्त बाबू श्यामसुन्दरदास

इसके सम्बन्ध में क्या लिखते हैं। "मैं आप को हार्दिक बधाई दिये बिना नहीं रह सकता। सच बात तो यह है कि आपका यह नाटक बहुत अच्छा लिखा गया है। विशेष कर शिवाजी के मुँह से ही आपने दूत वेष में उसके उद्देश्यों का वर्णन बड़ी कुशलता से किया है। जसवंत सिंह और जयसिंह के आन्तरिक भावों को भी आपने बड़ी सुन्दरता से प्रगट किया है।......आपके नाटक में एक और गुण है। उसमें प्रेम का जो चित्र खींचा गया है वह उतावलापन लिए कहीं कलुषित नहीं होने पाया है। वह बड़ा पवित्र, उच्चाशयपूर्ण तथा धीरतामय है। इससे यह नाटक स्कूलों तथा कालिजों के छात्रों द्वारा अभिनीत हो सकता है"।............

शीघ्र मंगाइये। पुस्तक हाथोहाथ बिक रही है। मूल्य साधारण संस्करण का दस आने और पुस्तकालय संस्करण का चौदह आने।

मिलने का पताः—

मैनेजर, लक्ष्मण साहित्य भंडार,

चौक, लखनऊ।